IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 31, Issue 1, Series 2 (January, 2026) 84-95
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

भरतमुनि का नाट्यमण्डप और समकालीन भारतीय रंगमंच

हर्षित राय[1], प्रशांत कुमार[2]

[1.] *शोधार्थी, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय*
[2.] *शोधार्थी, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय*

शोध-सारांश

*प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित **नाट्यमण्डप-विधान** का शास्त्रीय, स्थापत्य एवं ध्वनिकी (Acoustics) के परिप्रेक्ष्य में सम्यक् अध्ययन करना तथा उसके समकालीन भारतीय रंगमंच से संबंध को रेखांकित करना है। नाट्यशास्त्र में नाट्यमण्डप केवल एक भौतिक संरचना नहीं, बल्कि रस-निष्पत्ति का वैज्ञानिक एवं अनुष्ठानिक माध्यम है। भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित विकृष्ट, चतुरस्र और त्रयस्र मण्डपों तथा उनके ज्येष्ठ, मध्यम और अवर भेदों का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय रंगमंच दर्शक-अभिनेता के आत्मीय संबंध, ध्वनि-स्पष्टता तथा दृश्य-संप्रेषण को सर्वोपरि मानता था। विशेषतः 'मध्यम मण्डप' की अवधारणा यह सिद्ध करती है कि भारतीय रंगमंच का मूल लक्ष्य तकनीकी भव्यता नहीं, बल्कि भाव और रस की स्पष्ट अनुभूति है।*

शोध पत्र में रंगपीठ, रंगशीर्ष, मत्तवारणी एवं नेपथ्य जैसे आंतरिक अवयवों का विवेचन करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि आधुनिक थिएटर की कई संकल्पनाएँ—जैसे विंग्स, ग्रीन रूम और अकॉस्टिक डिज़ाइन—नाट्यशास्त्र की ही विकसित रूपरेखाएँ हैं। औपनिवेशिक काल में प्रोसीनियम मंच और 'चौथी दीवार' के सिद्धांत ने भारतीय रंगमंच को उसकी परंपरागत आत्मीयता से अलग किया, किंतु स्वतंत्रता के बाद 'थिएटर ऑफ़ रूट्स' आंदोलन ने पुनः नाट्यशास्त्र की ओर लौटने का मार्ग प्रशस्त किया। ब्लैक बॉक्स, थ्रस्ट स्टेज, कुट्टम्बलम्, एरिना स्टेज तथा नुक्कड़ नाटक जैसे आधुनिक मंचीय प्रयोग यह प्रमाणित करते हैं कि भरतमुनि की रंगमंचीय दृष्टि आज भी प्रासंगिक, जीवंत और मार्गदर्शक है। इस प्रकार यह शोध नाट्यशास्त्र को केवल अतीत का ग्रंथ नहीं, बल्कि समकालीन भारतीय रंगमंच की जीवित वैचारिक नींव सिद्ध करता है।

बीज-शब्द: *नाट्यशास्त्र, नाट्यमण्डप, मध्यम मण्डप, रंगपीठ, रंगशीर्ष, मत्तवारणी, नेपथ्य, ध्वनिकी (Acoustics), प्रोसीनियम मंच, चौथी दीवार, थिएटर ऑफ़ रूट्स, आंगिक अभिनय, भारतीय रंगमंच*

- **नाट्यमण्डप की उत्पत्ति**

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय के अनुसार, इन्द्रध्वज महोत्सव के अवसर पर जब भरतमुनि ने आदि नाट्य 'असुर-परायज' (अमृत-मन्थन) का मंचन किया, तब विरुपाक्ष के नेतृत्व में असुरों ने कीर्तन एवं नृत आदि में विघ्न उत्पन्न किए, तब निर्बाध मंचन के लिए देवताओं ने ब्रह्मा जी से एक सुरक्षित स्थान की प्रार्थना की। ब्रह्मा जी के आदेश पर

विश्वकर्मा ने एक सुरक्षित नाट्यमण्डप की रचना की। मण्डप के विभिन्न अंगों में देवताओं को स्थापित किया ताकि नकारात्मक शक्तियाँ प्रवेश न कर सकें जिसमें कुछ उदाहरण निम्न हैं-

- मत्तवारणी : इसमें इन्द्र और वज्र को स्थापित किया गया।
- स्तम्भ : यहाँ लोकपालों और दिग्पालों की स्थापना की गई।
- नेपथ्य : यहाँ यक्षों और गुह्यकों को रक्षक बनाया गया।
- रंगपीठ : स्वयं महादेव और ब्रह्मा जी की उपस्थिति मानी गई।

मण्डप निर्माण से पूर्व 'भूमि-पूजन' और 'शिलान्यास' का विधान भी द्वितीय अध्याय में विस्तार से है। सफेद धागे (पुण्डरीक सूत्र) से भूमि की नाप करना और ब्राह्मणों को भोजन कराना अनिवार्य बताया गया है। यदि निर्माण में त्रुटि हो, तो वह 'नाट्य-विनाश' का कारण बनती है।

- **नाट्यमण्डप के प्रकार: विकृष्ट, चतुरस्र और त्रयस्र**

भरतमुनि ने आकृति के आधार पर तीन मुख्य प्रकार के नाट्यमण्डप बताए हैं:

- **विकृष्ट (Rectangular):** यह आयताकार होता है।
- **चतुरस्र (Square):** यह वर्गाकार होता है।
- **त्रयस्र (Triangular):** यह त्रिकोणीय आकृति का होता है। (श्लोक 8)

इन तीनों को पुनः ज्येष्ठ (108 हाथ), मध्यम (64 हाथ) और अवर अर्थात् कनिष्ठ (32 हाथ) श्रेणियों में विभाजित किया गया है, जिससे कुल 9 प्रकार के मण्डप बनते हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार विकृष्ट, चतुरस्र और त्रयस्र ही ज्येष्ठ, मध्यम और अवर कहे गए हैं। इनमें ज्येष्ठ 'देवताओं के लिए', मध्यम 'राजाओं एवं मानवों के लिए' तथा अवर साधारण प्रयोग हेतु उपयोग होता है। इन्हें हस्त एवं दण्ड परिमाणों में विभाजित करने पर कुल 18 प्रकार के नाट्यमण्डपों की कल्पना नाट्यशास्त्र में की जा सकती है|

- **मध्यम मण्डप की महत्ता**

तकनीकी दृष्टि से नाट्यमण्डप का उद्देश्य केवल बाहरी बाधाओं से सुरक्षा नहीं, किन्तु ध्वनि (Acoustics) और दृश्यता (Visibility) का वैज्ञानिक प्रबंधन करना भी था। नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय का अवलोकन करे तो एक सफल एवं सुखद नाटक अथवा नाट्यप्रदर्शन के लिए दो तत्व अनिवार्य प्राप्त होते हैं:

- नाट्य में प्रस्तूत कथोपकथन तथा गीत प्रेक्षकों को स्पष्ट रूप से सुनाई दें अर्थात् उनमें विस्वरता का भाव न आए।
- अभिनेताओं के मुखों पर स्थित नाना दृष्टियों से समन्वित भाव भी अर्थात् सूक्ष्म मुखज अभिनय भी प्रेक्षकों को स्पष्ट होना चाहिए।

अतः नाट्यशास्त्र में 'मध्यम' मण्डप को मानवों के लिए सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसका माप 64 हाथ लंबा और 32 हाथ चौड़ा बताया गया है। यदि निर्मातागण इससे बड़े नाट्यगृह का निर्माण करेंगे तो प्रेक्षागृहों के अधिक विस्तीर्ण होने पर स्वरयुक्त पाठ्यों में अतिशय बेसुरापन एवं प्रस्तुत होने वाले नाट्याभिनय में अस्पष्टता आ जाएगी-

चतुःषष्टिकरान्कुर्याद्दीर्घत्वेन तु मण्डपम् ।
द्वात्रिंशेन तु विस्तारं मर्त्यानां यो भवेदिह ॥
अत ऊर्ध्वं न कर्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः ।
यस्माद्व्यक्तभावं हि तत्र नाटयं व्रजेदिति ॥ (नाट्यशास्त्र, 2.20-21)

अतः सभी प्रेक्षागृहों में 'मध्यम' को ही श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि इसमें पाठ्य (संवाद) और गेय (संगीत) स्पष्ट रूप से सुनाई देते हैं। यदि मण्डप अत्यधिक विशाल (ज्येष्ठ) होगा, तो स्वर बिखर जाएगा और दर्शकों को सूक्ष्म अभिनय अथवा मुखज अभिनय दिखाई नहीं देगा-

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तस्मान्मध्यममिष्यते।
यस्मात् पाठ्यं च गेयं च तत्र श्रव्यतरं भवेत्॥ (नाट्यशास्त्र, 2.24)

- **नाट्यमण्डप की आंतरिक संरचना:**

- **रंगपीठ और रंगशीर्ष**

नाट्यमण्डप का वह भाग जहाँ वास्तविक अभिनय होता है, उसे दो हिस्सों में बाँटा गया है:

"रंगपीठं ततः कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा।
रंगशीर्षं तु कर्तव्यं षड्दारुकसमन्वितम् ॥" (नाट्यशास्त्र 2.68)

- **रंगपीठ**: यह मंच का अगला हिस्सा है जहाँ अभिनेता मुख्य रूप से खड़े होकर संवाद और अभिनय करते हैं। समकालीन शब्दावली में इसे 'Proscenium Stage' का अग्र भाग (Front Stage) कह सकते हैं।
- **रंगशीर्ष**: यह रंगपीठ के पीछे का भाग होता है। 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार रंगशीर्ष, रंगपीठ से थोड़ा ऊँचा (लगभग 1.5 हाथ) होना चाहिए। यहाँ वाद्यवृन्द (कुतप) बैठते थे।'षड्दारुक' का अर्थ है कि इसे छह लकड़ियों के जोड़ से विशेष रूप से निर्मित किया जाता था। रंगशीर्ष की सतह दर्पण की तरह स्वच्छ और चिकनी होनी चाहिए (आदर्शगतलप्रख्यं)।
- **मत्तवारणी:** रंगपीठ के दोनों ओर 'मत्तवारणी' का निर्माण किया जाता था। यह 8x8 हाथ का एक वर्गाकार स्थान होता था जिसमें रंगपीठ के दाएं और बाएं ओर 4-4 स्तंभों पर आधारित दो दीर्घाएं बनाई जाती हैं। यह मंच की भुजाओं की तरह कार्य करता था-

"रंगपीठस्य पार्श्वे तु कर्तव्या मत्तवारणी।
चतुस्तम्भसमायुक्ता रंगपीठप्रमाणतः ॥" (नाट्यशास्त्र 2.63)

यहाँ से पात्रों का प्रवेश या गौण पात्रों का ठहराव होता था एवं भरतमुनि के निर्देशानुसार पात्रों के स्वरों को स्पष्ट रखने हेतु नाट्यमण्डप का आकार बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए। मत्तवारणी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'एको' (Echo) को नियंत्रित करना है। मत्तवारणी और इसके स्तंभों का विन्यास ध्वनि तरंगों को इस प्रकार बिखेरते हैं कि आवाज गूँजती नहीं किन्तु स्पष्ट सुनाई देती है अर्थात् मत्तवारणी पार्श्व विन्यास तथा ध्वनिकी के लिए प्रयोग होता था।

आज के थिएटर में जिन्हें हम 'विंग्स' (Wings) कहते हैं, जहाँ अभिनेता मंच पर आने से पहले छिपकर खड़े होते हैं, वही कार्य प्राचीन काल में 'मत्तवारणी' द्वारा किया जाता था। आधुनिक थिएटर में विंग्स को काले पर्दों से ढका जाता है, जबकि मत्तवारणी कलात्मक स्तंभों से सुसज्जित होती थी।

ध्वनिकी के सन्दर्भ में भरतमुनि ने 'शैल गुहा' (गुफा) के समान प्रतिध्वनि उत्पन्न करने वाले प्रेक्षागृह की कल्पना की थी ताकि बिना किसी माइक के अंतिम पंक्ति के दर्शक तक आवाज पहुँचे। आधुनिक समय में हम अकॉस्टिक पैनल्स और डिजिटल सराउंड साउंड का उपयोग करते हैं, जो उसी मूल सिद्धांत का तकनीकी विस्तार है।

- **नेपथ्य विधान:**

नेपथ्य वह स्थान है जहाँ पात्र अपना वेश विन्यास करते हैं। नाट्यशास्त्र के 2.35 में इसके स्थान का स्पष्ट निर्देश है:

"पश्चिमे तु विभागेऽस्य नेपथ्यगृहमादिशेत्।
द्वारं चैकं भवेत्तत्र रङ्गपीठप्रवेशनम् ॥" (नाट्यशास्त्र 2.35)

यह रंगशीर्ष के ठीक पीछे यानी मण्डप के सबसे पश्चिमी भाग में स्थित होता है। रंगशीर्ष और नेपथ्य के बीच की दीवार में दो द्वार होते हैं। इन्ही द्वारों से अभिनेता मंच (रंगपीठ) पर प्रवेश और निकास करते हैं तथा इन दोनों द्वारों के बीच में ही संगीतकार (कुतप) बैठते थे। पात्रों का श्रृंगार, वेशभूषा धारण करना और मंच की सामग्रियों को सुरक्षित रखना नेपथ्य का मुख्य कार्य है। अतः इसे साज-सज्जा कक्ष भी कहा जाता है। इसे दर्शकों की दृष्टि से पूरी तरह ओझल रखा जाता है। आधुनिक समय में नेपथ्य को ग्रीन रूम (Green Room) कहते हैं जिसके नेपथ्य के ही समान कार्य होते हैं। प्रचीन थिएटर में नेपथ्य का प्रयोग दृश्य परिवर्तन के लिए भी होता था जिसमें पर्दों (यवनिका) का सीमित प्रयोग होता था, अभिनेता अपनी चाल (गति) से स्थान परिवर्तन सूचित करते थे। आधुनिक भारतीय प्रेक्षागृहों में 'रिवॉल्विंग स्टेज' (Revolving Stage) और जटिल सेट डिजाइन ने नेपथ्य की भूमिका को और अधिक विस्तार दिया है।
इस प्रकार से कहा जा सकता है कि यद्यपि आज हमारे पास अत्याधुनिक तकनीक है, परंतु रंगपीठ, रंगशीर्ष और नेपथ्य आदि का मूल ढांचा आज भी अपरिवर्तित है। समकालीन भारतीय प्रेक्षागृह उसी प्राचीन वास्तुशिल्प का विकसित और तकनीकी रूप हैं। जहाँ प्राचीन मंडप 'भाव' और 'रस' की निष्पत्ति पर केंद्रित थे, वहीं आधुनिक प्रेक्षागृह 'तकनीकी पूर्णता' और 'यथार्थपरक प्रस्तुति' पर बल देते हैं।

- **भरतमुनि का नाट्यशास्त्र और समकालीन भारतीय रंगमंच :**

भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र भारतीय कला विमर्श का आदि ग्रंथ है। यह केवल नाटक के बारे में नहीं, बल्कि संगीत, नृत्य, वास्तुकला, वेशभूषा और रस-सिद्धांत का विश्वकोश है। दूसरी ओर, समकालीन भारतीय रंगमंच वह है

जिसने ब्रिटिशकालीन 'पारसी थिएटर' और 'प्रोसीनियाम' की जकड़न को तोड़कर अपनी सांस्कृतिक जड़ों की ओर वापसी की है। भारतीय रंगमंच का आधुनिक इतिहास वास्तव में 'स्व' की खोज का इतिहास है। यह यात्रा औपनिवेशिक प्रभाव के कारण अपनी पहचान खोने और फिर नाट्यशास्त्र की जड़ों की ओर लौटने की एक वैचारिक प्रक्रिया है।

4.1 औपनिवेशिक प्रोसीनियम मंच:

4.1.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और प्रभाव:

भारत में प्रोसीनियम (Proscenium) मंच का प्रवेश ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की देन था। 1775 में कलकत्ता में 'प्लेहाउस (द कलकत्ता थिएटर)' की स्थापना के साथ ही वह मंच भारतीय मानस पर थोपा गया, जो यूरोपीय यथार्थवाद (Realism) की उपज था। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने अपनी पुस्तक 'भारतीय रंगमंच का इतिहास' में रेखांकित किया है कि कैसे इस विदेशी मंच ने भारतीय दर्शकों और अभिनेताओं के बीच एक अभेद्य दीवार खड़ी कर दी। इसकी विशेषता 'पिक्चर फ्रेम' मंच होती है, जहाँ दर्शक और अभिनेता के बीच एक 'चौथी दीवार' (Fourth Wall) होती है। इसे 'The Theory of Fourth wall' (चौथी दीवार का सिद्धांत) कहा गया।

4.1.2 The Theory of Fourth wall (चौथी दीवार का सिद्धांत):

इसके अनुसार प्रोसीनियम मंच जिसका आधार यथार्थवाद था, यह मानता था कि मंच पर घट रही घटना एक बंद कमरे की तरह है जिसे दर्शक एक अदृश्य 'चौथी दीवार' से देख रहे है अर्थात् अभिनेता मंच पर इस तरह व्यवहार करते हैं जैसे वे एक बंद कमरे में हों और उन्हें कोई देख न रहा हो तथा दर्शक भी यह मान लेते हैं कि वे एक ऐसी दुनिया को देख रहे हैं जिसमें उनकी उपस्थिति का कलाकारों को पता नहीं है। इस सिद्धांत को 18वीं-19वीं शताब्दी के यथार्थवाद (Realism) और प्राकृतिकवाद (Naturalism) के दौर में अधिक मजबूती मिली। फ्रांसीसी नाटककार और निर्देशक आंद्रे एंटोनी (André Antoine) ने इसे लोकप्रिय बनाया।

4.1.3 Breaking of Fourth Wall:

जब कोई कलाकार सीधे दर्शकों की ओर देखकर बात करता है या यह स्वीकार करता है कि वह एक नाटक का हिस्सा है, तो इसे 'चौथी दीवार तोड़ना' कहा जाता है।प्रसिद्ध जर्मन निर्देशक बर्टोल्ट ब्रेख्त (Bertolt Brecht) ने सर्वप्रथम इस दीवार को तोड़ा। उनके अनुसार प्रोसीनियम मंच दर्शकों को भावनात्मक रूप से बांध देती है और उन्हें यह सोचने का मौका नहीं देती कि वे एक नाटक देख रहे हैं। उन्होंने 'एलीनेशन इफेक्ट' (Verfremdungseffekt) का सिद्धांत दिया, ताकि दर्शक नाटक में इतने न खो जाएँ कि वे सोचना बंद कर दें। वे चाहते थे कि दर्शक जागरूक रहें कि वे एक नाटक देख रहे हैं और उस पर तर्क करें। चौथी दीवार का सिद्धांत रंगमंच को 'यथार्थपरक' बनाता है, जबकि इसे तोड़ना रंगमंच को 'संवादात्मक' और 'वैचारिक' बनाता है।

4.1.4 नाट्यशास्त्र और The theory of fourth wall:

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में चौथी दीवार का सिद्धांत लागू नहीं होता। भारतीय परंपरा में 'प्रस्तावना', 'विदूषक' का दर्शकों से बात करना और 'भरतवाक्य' स्पष्ट रूप से दर्शकों और अभिनेता के बीच के पर्दे को हटा देते हैं। इसके साथ ही

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में 'विकृष्ट', 'चतुरस्त्र' और 'त्र्यस्त्र' मंडपों की व्याख्या की थी, जहाँ दर्शक और अभिनेता का संबंध अत्यंत आत्मीय होता था। नाट्यशास्त्र में 'लोकधर्मी' (यथार्थवादी) और 'नाट्यधर्मी' (प्रतीकात्मक) का जो अद्भुत संतुलन था, प्रोसीनियम ने उसे नष्ट कर दिया। नाट्यशास्त्र में अभिनेता दर्शकों से संवाद करता था, किंतु प्रोसीनियम ने अभिनेता को एक फ्रेम में कैद कर दिया।

4.1.5 प्रोसीनियम मंच की आंतरिक संरचना

- प्रोसीनियम थिएटर की संरचना को निम्न मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है:
- प्रोसीनियम आर्च (The Proscenium Arch): यह वह 'फ्रेम' है जिसके माध्यम से दर्शक नाटक को देखते हैं। यह एक खिड़की की तरह कार्य करता है। इसी के आधार पर 'चौथी दीवार' (Fourth Wall) का सिद्धांत विकसित हुआ।
- एप्रन (Apron): प्रोसीनियम आर्च के सामने का वह हिस्सा जो दर्शकों की ओर निकला होता है, 'एप्रन' कहलाता है। नाट्यशास्त्र में वर्णित 'मत्तवारणी' की तुलना आंशिक रूप से इससे की जा सकती है, जहाँ अभिनेता मुख्य मंच से थोड़ा आगे आकर संवाद कर सकता है।
- फ्लाई लोफ्ट (Fly Loft): मंच के ठीक ऊपर की छत जो दर्शकों को दिखाई नहीं देती। यहाँ परदों, लाइटों और सीनरी को रस्सियों के माध्यम से ऊपर-नीचे किया जाता है।
- विंग्स (Wings): मंच के दोनों ओर के वे स्थान जहाँ कलाकार अपनी एंट्री का इंतज़ार करते हैं। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में इसके लिए 'नेपथ्य' शब्द का प्रयोग किया है:

"यस्त्वत्र नेपथ्यगृहं तस्य द्वारे भविष्यतः।" (नाट्यशास्त्र 2.94)

- **आयाम**

प्रोसीनियम मंच की कोई एक निश्चित माप नहीं होती, यह थिएटर की क्षमता पर निर्भर करता है, लेकिन एक मानक पेशेवर थिएटर के आयाम में चौड़ाई 30 से 50 फीट और गहराई 25 से 40 फीट होती है। मंच की चौड़ाई इस प्रकार तय की जाती है कि कोने में बैठे अंतिम दर्शक को भी मंच का पिछला हिस्सा (Backstage) दिखाई न दे। मंच की ऊंचाई दर्शकों की नजर के स्तर से लगभग 3 फीट ऊपर से शुरू होती है। आर्च की ऊंचाई आमतौर पर 18 से 30 फीट के बीच होती है।
भरतमुनि ने मध्यम आकार के 'विकृष्ट मंडप' के लिए स्पष्ट माप दी है जोकि 64 हाथ लंबा और 32 हाथ चौड़ा होना चाहिए:

"चतुष्षष्टिः कराञ्छैधो दैर्घ्येण तु प्रकीर्तितम्।
द्वात्रिंशच्चैव विस्तारान्मण्डपस्य तु लक्षणम्॥" (नाट्यशास्त्र 2.17)

यदि हम 1 हाथ को 1.5 फीट मानें, तो यह 96 फीट x 48 फीट बनता है। प्रोसीनियम मंच अक्सर इसी अनुपात (2:1) का पालन करते हैं, लेकिन उनकी 'ऊंचाई' अधिक होती है ताकि 'फ्लाई सिस्टम' का उपयोग किया जा सके।
परन्तु प्रोसीनियम की सफलता का कारण उनके ये भौतिक विषय न होकर उनके तकनीकी पक्ष (set and props) रहे हैं जिनमें ट्रैप डोर, रिवाल्विंग स्टेज, ऑर्केस्ट्रा पीट जैसे आधुनिक तकनीक मुख्य रहे हैं। यही कारण रहा कि एरीन बी.मी. ने कहा कि प्रोसीनियम थिएटर ने तकनीक को कलाकार से बड़ा बना दिया।

अतः प्रोसेनियम थिएटर के पश्चिमी यथार्थवाद ने भारतीय रंगमंच को केवल संवादों और भारी सेटों तक सीमित कर दिया जिसमें चकाचौंध एवं चमत्कार अधिक था। इसमें भारतीय शास्त्रीय संगीत और नृत्य के गहरे तत्वों का स्थान 'मेलोड्रामा' ने ले लिया तथा भारतीय पारंपरिक शैलियों (जैसे नौटंकी, यक्षगान) को 'गंवारू' घोषित कर दिया गया।

4.1.6 मुक्ति का संघर्ष:

स्वतंत्रता के बाद, भारतीय निर्देशकों ने महसूस किया कि प्रोसीनियम मंच भारतीय संवेदनाओं, महाकाव्यों और ग्रामीण वास्तविकता को व्यक्त करने में असमर्थ है। प्रोसीनियम से मुक्ति की शुरुआत 1940 के दशक में 'इप्टा' (Indian People's Theatre Association) के साथ हुई। 1944 में 'नबान्न' नाटक के मंचन ने पहली बार प्रोसीनियम की भव्यता को चुनौती दी। 'नबान्न' जैसे नाटकों ने पहली बार दिखाया कि रंगमंच महलों के ड्राइंग रूम से निकलकर खेतों और खलिहानों तक जा सकता है।सुधी प्रधान ने स्पष्ट किया है कि यहाँ से रंगमंच 'ड्राइंग रूम' से निकलकर 'जनता' के बीच जाने लगा। इब्राहिम अल्काज़ी जैसे निर्देशकों ने जहाँ इसे तकनीकी रूप से सुधारा, वहीं बाद की पीढ़ी ने इस 'फ्रेम' को तोड़कर खुले मैदानों और वैकल्पिक मंचों की तलाश शुरू की। इब्राहिम अल्काज़ी ने यद्यपि प्रोसीनियम में काम किया, लेकिन उन्होंने 'अंधा युग' का मंचन पुराने किले के खंडहरों में करके यह सिद्ध कर दिया कि नाटक के लिए बंद हॉल अनिवार्य नहीं है। अच्युत वझे जैसे समीक्षकों के अनुसार, यह भौतिक मंच से मुक्ति की पहली बड़ी छलांग थी जोकि आगे चलकर 'Theatre of Roots' (थिएटर ऑफ रूट्स) आंदोलन का कारण बनी।

4.1.7 'थिएटर ऑफ रूट्स' (जड़ों की ओर) आंदोलन

1960 और 70 के दशक में भारतीय रंगमंच में एक क्रांतिकारी बदलाव आया, जिसे सुरेश अवस्थी ने 'थिएटर ऑफ रूट्स' कहा। इसे 'जड़ों की ओर' या 'Roots' मूवमेंट भी कहा गया। इस शब्द का प्रयोग प्रसिद्ध विद्वान सुरेश अवस्थी ने अपने लेख "Theatre of Roots: Encounter of Modernist Theatre with Tradition" (जो बाद में 'The Drama Review' पत्रिका में प्रकाशित हुआ) में किया था। अवस्थी का मानना था कि भारतीय रंगमंच तभी आधुनिक हो सकता है जब वह अपनी परंपराओं (Roots) से शक्ति ग्रहण करे। उनका तर्क था कि भारतीय रंगमंच की आधुनिकता उसकी अपनी परंपराओं में छिपी है, न कि पश्चिम की नकल में। भारतीय निर्देशकों (जैसे बी.वी. कारंत, हबीब तनवीर, रतन थियम) ने भी यह महसूस किया कि वे पश्चिमी नाटकों (ब्रेख्त, बेकेट, चेखव) का अनुवाद तो कर रहे हैं, लेकिन उनकी अपनी पहचान खोती जा रही है।

थिएटर ऑफ़ रूट्स आंदोलन मुख्य उद्देश्य पश्चिमी नाटक की नकल छोड़कर अपनी लोक कथाओं, अनुष्ठानों और शास्त्रीय तकनीकों का उपयोग करना था अर्थात् 'पश्चिम' के स्थान पर 'स्व' को स्थापित करना था। इसके लिए निर्देशकों ने दो प्रमुख स्रोतों का सहारा लिया:

- भरतमुनि का नाट्यशास्त्र: शास्त्रीय नियम, मुद्राएँ और अभिनय के चार प्रकार (आंगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक)।
- लोक परंपराएँ: यक्षगान, नौटंकी, छऊ, कूडियाट्टम, और भवाई जैसी देशज शैलियाँ।

अतः एरीन बी. मी ने कहा कि यह आंदोलन औपनिवेशिक प्रोसीनियम की "चौथी दीवार" को तोड़कर दर्शकों के साथ एक जीवंत और अनुष्ठानिक संबंध स्थापित करने का प्रयास था।

4.1.8 थिएटर ऑफ़ रूट्स एवं नाट्यशास्त्र:

यह आंदोलन सीधे तौर पर नाट्यशास्त्र के पुनराविष्कार से जुड़ा है।इस आंदोलन ने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के उन तत्वों को पुनर्जीवित किया जिन्हें औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति ने भुला दिया था। नाट्यशास्त्र में आंगिक, वाचिक , आहार्य और सात्विक इन चार प्रकार के अभिनयों की चर्चा है। जड़ों की ओर लौटते समय निर्देशकों ने 'वाचिक' से हटकर 'आंगिक' और 'आहार्य' पर जोर दिया। एरीन बी. मी ने भी कहा कि इस आंदोलन में भारतीय निर्देशकों ने पश्चिमी 'टेक्स्ट-बेस्ड' (पाठ-प्रधान) रंगमंच को त्यागकर 'बॉडी-बेस्ड' (शरीर-प्रधान) रंगमंच को अपनाया। यह सीधे तौर पर नाट्यशास्त्र के 'आंगिक अभिनय' की पुनर्स्थापना थी। कपिल वात्स्यायन ने अपनी कृति 'Traditional Indian Theatre: Multiple Streams' में इस बात पर जोर दिया है कि भारतीय परंपरा में 'मार्ग' (शास्त्रीय) और 'देशज' (लोक) के बीच कभी कोई विभाजन नहीं था।

थिएटर ऑफ रूट्स ने नाट्यशास्त्र के उस मूल मंत्र को पहचाना जहाँ नाटक केवल मनोरंजन नहीं, अपितु एक यज्ञ या सामुदायिक अनुष्ठान है।
भरतमुनि कहते हैं:

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥" (नाट्यशास्त्र 1.116)

साधारणतः इसका तात्पर्य है कि ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प या कला नहीं जो नाट्य में न हो। इस आंदोलन के निर्देशकों ने इसी समग्रता को वापस लाने का प्रयास किया। उन्होंने प्रोसीनियम के 'शुष्क यथार्थवाद' को छोड़कर नाट्यशास्त्र के 'नाट्यधर्मी' स्वरूप को अपनाया।

इस प्रकार थिएटर ऑफ रूट्स ने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को फिर से खोलकर देखा। इसमें निम्नलिखित तत्वों पर ध्यान दिया गया:

- यहाँ संवाद से ज्यादा शरीर की गति और भंगिमाओं पर जोर दिया गया। यह नाट्यशास्त्र के 'आंगिक अभिनय' की पुनर्स्थापना थी।
- पश्चिमी नाटक में संगीत पार्श्व (Background) में होता था, लेकिन यहाँ संगीत, नृत्य और लय नाटक के अभिन्न अंग बन गए।
- भारी लकड़ी के सेटों के बजाय, अभिनेता के शरीर और दुपट्टों, मुखौटों या बाँस की डंडियों जैसे प्रतीकात्मक उपकरणों का उपयोग किया गया।
- नाटक बंद थिएटरों से निकलकर मंदिरों के प्रांगण (जैसे कुट्टम्बलम्), सामुदायिक केंद्रों (असम के नामघर) और खुले मैदानों में पहुँचा।

- इसमें संगीत और नृत्य का एकीकरण किया गया। नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक बिना संगीत के अपूर्ण है। बी.वी. कारंत ने 'हयवदन' नाटक में यक्षगान की लोक धुनों का प्रयोग करके यह दिखाया कि 'लय' ही नाटक की आत्मा है। इस प्रयोग का विस्तृत विवरण नेमिचंद्र जैन की पुस्तक 'रंगमंच: नया परिप्रेक्ष्य' में मिलता है।

4.1.9 थिएटर ऑफ़ रूट्स को जीवंत करने वाले आधुनिक भारतीय निर्देशक:

- **बी.वी. कारंत:** उन्होंने कर्नाटक की 'हयवदन' और 'बर्नम वन' जैसे नाटकों के माध्यम से यक्षगान की लोक शैली को आधुनिक रंगमंच पर उतारा। उनके नाटक 'हयवदन' (गिरीश कर्नाड द्वारा लिखित) को इस आंदोलन का मील का पत्थर माना जाता है। उन्होंने दिखाया कि कैसे लोक संगीत और मुखौटे आधुनिक जटिलताओं को व्यक्त कर सकते हैं।
- **रतन थियम:** उन्होंने मणिपुर की परंपराओं को वैश्विक पहचान दी। उनके नाटक 'चक्रव्यूह' में महाभारत की कथा को मणिपुरी युद्ध कला (Thang-Ta) के माध्यम से पेश किया गया। नाट्यशास्त्र के 'आहार्य' और 'आंगिक' अभिनय को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय इन्ही को जाता है। रिचर्ड शेखनर (Richard Schechner) ने उनके काम पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि थियम के नाटक नाट्यशास्त्र के 'अनुष्ठानिक' स्वरूप की आधुनिक व्याख्या हैं।
- **हबीब तनवीर:** उनके नाटक 'चरणदास चोर' और 'मिट्टी की गाड़ी' (मृच्छकटिकम का रूपांतरण) लोक और शास्त्र के मिलन बिंदु हैं। जावेद मलकानी के अनुसार हबीब ने छतीसगढ़ के अनपढ़ लोक कलाकारों के माध्यम से 'भरतमुनि' के लोकधर्मी सिद्धांतों को चरितार्थ कर यह सिद्ध किया कि 'लोकधर्मी' परंपरा ही भारत का सच्चा रंगमंच है। 'चरणदास चोर' इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।
- **के.एन. पणिक्कर:** पणिक्कर ने केरल की 'सोपानम' पद्धति और 'कूडियाट्टम' के आधार पर संस्कृत नाटकों को नया जीवन दिया। उन्होंने भाषा से अधिक नाद और लय पर काम किया।बद्री नारायण के लेखों से यह पता चलता है कि पणिक्कर ने नाट्यशास्त्र के 'मुद्रा विज्ञान' को आधुनिक मंच की जरूरत बनाया।

4.2 अन्य रंगमच

4.2.1 ब्लैक बॉक्स:

ब्लैक बॉक्स एक ऐसा आधुनिक नाट्य मंच है जो मूलतः एक बड़ा वर्गाकार या आयताकार कमरा होता है जिसकी दीवारें और फर्श काले रंग के होते हैं। ब्लैक बॉक्स में 'काले रंग' का उपयोग इसलिए किया जाता है ताकि प्रकाश (Focus Lights) के माध्यम से केवल वांछित हिस्से को ही उभारा जा सके। इसकी मुख्य विशेषता इसकी लचीलापन (Flexibility) है। इसमें कोई स्थायी मंच (Stage) या दर्शकों के बैठने की निश्चित व्यवस्था नहीं होती। ब्लैक बॉक्स की अवधारणा भरतमुनि के 'चतुरस्त्र मध्यम' मंडप के सबसे निकट बैठती है। भरतमुनि ने बड़े प्रेक्षागृहों के बजाय मध्यम और छोटे मंडपों को वरीयता दी थी ताकि नाट्याभिनय और 'रस' का संचार बेहतर हो सके।ब्लैक बॉक्स में सेट (Set) और फर्नीचर का उपयोग बहुत कम होता है। यहाँ सारा भार अभिनेता के शरीर और प्रकाश (Light) पर होता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार, रस-निष्पत्ति के लिए अभिनेता के सूक्ष्म भावों का दर्शकों तक पहुँचना अनिवार्य है, जो ब्लैक बॉक्स के सीमित

और केंद्रित वातावरण में संभव होता है। यहाँ 'नाट्यधर्मी' शैली का प्रयोग होता है, जहाँ भारी सेटों के बजाय प्रकाश और अभिनय के माध्यम से दृश्य रचे जाते हैं, जो भरतमुनि के "लोकवृत्तानुकरणम्" के सिद्धांत को आधुनिक संदर्भ प्रदान करता है। ब्लैक बॉक्स में अभिनेता की सांसों की आवाज़ तक दर्शक सुन सकते हैं। यह वातावरण ठीक वैसा ही है जैसा प्राचीन 'कुट्टम्बलम्' (केरल के मंदिर मंच) में होता था, जहाँ तेल के दीयों की मद्धम रोशनी में अभिनेता के चेहरे के सूक्ष्म उतार-चढ़ाव 'सात्विक अभिनय' को सिद्ध करते थे।आधुनिक निर्देशक जैसे बादल सरकार ने अपने 'थर्ड थिएटर' के लिए ब्लैक बॉक्स जैसी खाली जगहों को चुना।

4.2.2 थ्रस्ट स्टेज:

थ्रस्ट स्टेज रंगमंच का वह स्थापत्य है जहाँ मंच का एक बड़ा हिस्सा दर्शकों के बीच तक निकला होता है और दर्शक उसे तीन तरफ से घेरे रहते हैं। यह ढांचा भी वैचारिक रूप से भरतमुनि के उस सिद्धांत के बहुत करीब है जहाँ दर्शक और अभिनेता के बीच की भौतिक दूरी को कम करने पर बल दिया गया है। नाट्यशास्त्र के दूसरे अध्याय में वर्णित 'मत्तवारणी' की संकल्पना थ्रस्ट स्टेज के विस्तार जैसी ही प्रतीत होती है, जो मुख्य मंच को अतिरिक्त आयाम प्रदान करती थी। भरतमुनि ने मध्यम आकार के मंडपों को इसीलिए प्राथमिकता दी थी ताकि अभिनेता के चेहरे के सूक्ष्म भाव और 'सात्विक अभिनय' पीछे बैठे दर्शकों तक भी स्पष्ट रूप से पहुँच सकें। थ्रस्ट स्टेज इसी 'आत्मीयता' (Intimacy) को सुनिश्चित करता है, जिससे दर्शक स्वयं को नाटक का एक सक्रिय हिस्सा महसूस करता है।

अभिनय की दृष्टि से थ्रस्ट स्टेज पर काम करना नाट्यशास्त्र के 'आंगिक अभिनय' की कसौटी पर खरा उतरना है। चूँकि इसमें दर्शक तीन दिशाओं में होते हैं, इसलिए अभिनेता केवल संवाद (वाचिक) पर निर्भर नहीं रह सकता; उसे अपने पूरे शरीर की भंगिमाओं और गति का उपयोग करना पड़ता है। यह भरतमुनि के 'कक्ष्या विभाग' के सिद्धांत को जीवंत करता है, जहाँ मंच के अलग-अलग कोनों का उपयोग करके विभिन्न समय और स्थानों को दर्शाया जाता है। बी.वी. कारंत और कवलम नारायण पणिक्कर जैसे निर्देशकों ने पाया कि थ्रस्ट स्टेज पर अभिनय करना नाट्यशास्त्र के 'आंगिक अभिनय' के अधिक करीब है। यहाँ अभिनेता केवल संवाद नहीं बोलता, बल्कि उसका पूरा शरीर (360 डिग्री) एक जीवंत मूर्तिकला की तरह कार्य करता है।

4.2.3 कुट्टम्बलम्

यह केवल केरल के मंदिरों में पाया जाने वाला पारंपरिक मंच है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के 'मंडप विधान' का सबसे जीवंत और वैज्ञानिक उदाहरण यही है। इसकी छत, खंभे और ध्वनि गूँज (Acoustics) पूरी तरह से शास्त्र के नियमों पर आधारित हैं।

4.2.4 एम्फीथिएटर (मुक्तकाशी मंच)

यह एक खुला हुआ रंगमंडल होता है जिसमें दर्शकों के बैठने की जगह अर्धवृत्ताकार या वृत्ताकार सीढ़ियों जैसी होती है। भारत में 'संगीत नाटक अकादमी' और कई सांस्कृतिक केंद्रों में ऐसे मंच हैं। यह ग्रीक थिएटर और भारतीय मंदिर मंचों का मिश्रण है। शांतिनिकेतन का 'आम्रकुंज' भी एक प्रकार का प्राकृतिक एम्फीथिएटर ही है।

4.2.5 एरिना स्टेज (Arena Stage / Theatre-in-the-round)

इसमें मंच केंद्र में होता है और दर्शक चारों ओर (360 डिग्री) बैठे होते हैं। भारत के कई पारंपरिक लोक नाट्य जैसे 'भवाई' (गुजरात) और 'तमाशा' (महाराष्ट्र) मूलतः इसी शैली के हैं। आधुनिक रंगमंच में निर्देशक इसका प्रयोग तब करते हैं जब उन्हें दर्शकों को नाटक के भीतर एक 'गवाह' की तरह शामिल करना होता है। इसमें किसी भी तरह के सेट का प्रयोग असंभव होता है, इसलिए अभिनेता की 'आंगिक' ऊर्जा और 'वाचिक' स्पष्टता ही मुख्य होती है।

4.2.6 स्ट्रीट थिएटर (नुक्कड़ नाटक)

यह भारत का सबसे सक्रिय और सामाजिक रंगमंच है। इसमें किसी औपचारिक मंच की आवश्यकता नहीं होती; चौराहा, बाज़ार या पार्क ही मंच बन जाता है। सफदर हाशमी और उनके समूह 'जनम' (JANAM) ने इसे भारत में नई ऊँचाइयां दीं। यह नाट्यशास्त्र के 'लोकधर्मी' स्वरूप का आधुनिक चेहरा है, जहाँ कलाकार और जनता के बीच की हर दीवार ढह जाती है।

5. निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भरतमुनि का *नाट्यशास्त्र* केवल नाट्यकला का ग्रंथ नहीं, बल्कि भारतीय रंगमंच का एक समग्र वैज्ञानिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक विधान है। नाट्यमण्डप की संरचना, उसके माप, आंतरिक विभाजन और ध्वनिकी के नियम यह सिद्ध करते हैं कि प्राचीन भारतीय रंगमंच दर्शक और अभिनेता के बीच भावात्मक निकटता तथा रस-निष्पत्ति को केंद्र में रखकर विकसित हुआ था। औपनिवेशिक प्रोसीनियम मंच ने भले ही तकनीकी साधनों को बढ़ाया हो, परंतु उसने भारतीय रंगमंच की संवादात्मक और अनुष्ठानिक प्रकृति को बाधित किया। स्वतंत्रता के बाद 'थिएटर ऑफ़ रूट्स' आंदोलन तथा आधुनिक वैकल्पिक मंचों—जैसे ब्लैक बॉक्स, थ्रस्ट स्टेज और स्ट्रीट थिएटर—के माध्यम से भारतीय रंगमंच ने पुनः अपनी शास्त्रीय जड़ों से संवाद स्थापित किया। यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक रंगमंच की प्रासंगिकता और मौलिकता तभी संभव है जब वह नाट्यशास्त्र की अवधारणाओं को आत्मसात करे। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भरतमुनि का नाट्यमण्डप-विधान आज भी भारतीय रंगमंच के लिए एक जीवंत, व्यावहारिक और वैचारिक मार्गदर्शक बना हुआ है, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सशक्त सेतु का निर्माण करता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची:

- भरतमुनि. (2016). *नाट्यशास्त्र* (सं. एवं हिन्दी व्याख्या: आचार्य सत्यव्रत सिंह). चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
- अभिनवगुप्त. (2012). *अभिनवभारती (नाट्यशास्त्र-टीका)* (सं. पं. बदरीनाथ शुक्ल). चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।
- वात्स्यायन, कपिला. (2007). *भारतीय रंगमंच की परंपरा.* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली।
- वरदपांडे, म. ल. (1999). *भारतीय रंगमंच का इतिहास.* अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली।
- लाल, लक्ष्मी नारायण. (2003). *भारतीय रंगमंच का इतिहास.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- अवस्थी, सुरेश. (1992). *भारतीय रंगमंच: परंपरा और प्रयोग.* साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

- जैन, नेमिचंद्र. (2005). *रंगमंच: नया परिप्रेक्ष्य.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- पणिक्कर, के. एन. (2010). *कूडियाट्टम् और संस्कृत रंगमंच.* केरल साहित्य अकादमी, त्रिशूर।
- तनवीर, हबीब. (2004). *लोक और रंगमंच.* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- भारद्वाज, सुधा. (2011). *भारतीय लोक रंगमंच.* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

English References:

- Bharata Muni. (1951). *The Nāṭyaśāstra: A treatise on Hindu dramaturgy and histrionics* (M. Ghosh, Trans., Vols. 1–2). Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta.
- Ghosh, M. (Ed. & Trans.). (1967). *The Nāṭyaśāstra of Bharata*. Manisha Granthalaya, Calcutta.
- Abhinavagupta. (2006). *Abhinavabhāratī: Commentary on the Nāṭyaśāstra* (Trans. & Ed. by M. M. Ghosh). New Bharatiya Book Corporation, New Delhi.
- Varadpande, M. L. (1987). *History of Indian Theatre* (Vol. 1: Classical Theatre). Abhinav Publications, New Delhi.
- Vatsyayan, K. (1996). *Traditional Indian Theatre: Multiple Streams*. National Book Trust, New Delhi.
- Dharwadker, A. B. (2005). *Theatres of Independence: Drama, Theory, and Urban Performance in India since 1947*. University of Iowa Press, Iowa City.
- Mee, E. B. (2008). *Theatre of Roots: Redirecting the Modern Indian Stage*. Seagull Books, Calcutta.
- Keith, A. B. (1924). *The Sanskrit Drama: Its origin, development, theory, and practice*. Clarendon Press, Oxford.
- Schechner, R. (1988). *Performance Theory*. Routledge, New York.
- Zarrilli, P. B. (1990). *Kathakali Dance-Drama: Where Gods and Demons Come to Play*. Routledge, London.